।।श्री कृष्णः शरणं मम।।

क्रोध आएगा ही

हम सब अपनी ही एक आदत से स्वयं परेशान रहते हैं- 'मुझे क्रोध बहुत आता है..... गुस्से में फिर क्या क्या कर जाता हूं, क्या कह जाता हूं, कुछ ध्यान ही नहीं रहता। कितनी बार तो इस गुस्से के कारण बने बनाए काम बिगड़ जाते हैं। घर में तो कितनी कलह होती है उसका कोई हिसाब ही नहीं। बाद में पछतावा तो बहुत होता है। लेकिन क्या करूं? गुस्सा जब आता है तो कुछ होश नहीं रहता, कोई वश नहीं चलता।'

कुछ लोग जरा दूसरे ढंग से कहते हैं- 'मुझे वैसे तो गुस्सा नहीं आता लेकिन दूसरा जब मुझ पर अनुचित क्रोध करता है तो फिर मैं अपने आप को रोक नहीं सकता। मेरा क्रोध क्रिया नहीं, प्रतिक्रिया होता है।'

बहुत परेशानी का विषय है। क्रोध क्रिया हो या प्रतिक्रिया, परिणाम तो एक ही है- अपना सर्वनाश। इससे बचा कैसे जाए? बहुत से विद्वानों से पूछा।

एक ने कहा- 'एक उपाय मैं जानता हूं लेकिन वह पुरुषों के लिए नहीं, केवल स्त्रियों के लिए कारगर है।' मेरा कौतहूल जागा। उन्होंने कहा- 'स्त्रियां अपने 'फेस वैल्यू' यानि चेहरे की सुंदरता और आकर्षण के प्रति बहुत जागरूक होती हैं। इसके लिए कुछ भी कर सकती हैं। अतः उन्हें जब क्रोध

आए तो अपना लाल, पीला, नीला, फड़कता हुआ चेहरा शीशे में देख लें। फिर जब भी क्रोध आना आरम्भ हो तो अपने आप को याद दिला दें कि अब उनका 'फेस' कैसा दिखाई देने वाला है।'

एक महात्मा ने कहा- 'क्रोध आने पर अपने दांतों से जीभ दबा कर तीन बार ॐ तत्सत्, ॐ तत्सत्, ॐ तत्सत् कहो। यह मंत्र है। इससे क्रोध टिक नहीं पाता।'

एक बड़े मनोवैज्ञानिक थे। उन्होंने कहा- 'जब क्रोध आए तो उस स्थान से हट कर कहीं चल जाओ।' दूसरे ने कहा कि ऐसे समय शरीर और दिमाग दोनों को व्यस्त कर दो। बागवानी आदि ऐसा काम करो जिसमें शारीरिक मेहनत भी हो और ध्यान भी बंटे। किसी ने सहेली के साथ गप-शप करने की सलाह दी किसी ने शापिंग के लिए निकल जाने की और किसी ने टी. वी. देखने की।

सब आजमाए। सुझाव अपनी अपनी जगह ठीक ही थे। गुस्से की मार से क्षणिक बचाव तो होता था पर समाधान नहीं होता। गुस्सा आना बंद नहीं हुआ। कुछ देर के लिए रुक भी जाता तो उसकी खुट खुट अवचेतन मन में ध्वनि करती रहती थी। और फिर अचानक भोंपू बज उठता।

मेरी मां है- गीता मैय्या। बड़ा प्रेम है उनका मुझ पर। गीता मैय्या के ममतामय आंचल की छांह में मुझे हर समस्या का समाधान मिलता है। उन्होंने समझाया- 'किसी भी चीज से बचना है तो उसके मूल कारण को समझने का प्रयत्न करो। जब तक जड़ नहीं जाएगी तब तक फल उगने बंद नहीं होंगे। क्रोध को नहीं क्रोध के कारण को दूर करो।'

'लेकिन मां! मेरे गुस्से के कारण तो दूसरे होते हैं। कभी कोई वस्तु कारण बनती है कभी कोई व्यक्ति। क्या तुम चाहती हो कि मैं सबको दूर कर दूं, सबसे दूर हो जाऊं? हिमालय भेजने का इरादा है क्या?'

मां ने कहा– 'अरी पगली। इन ऊपरी ऊपरी बातों में कब तक भटकती रहोगी? जितनी बड़ी दुनिया बाहर है उतनी ही अंदर। जो अंदर है वह तुम्हारे इतना नजदीक है कि दूर तो तुम जा ही नहीं सकती। इन्हें देखो और समझो।'

उन्होंने बहुत प्रेम से मुझे मन, बुद्धि, अहंकार, संस्कार आदि के विषय में बताया, इनकी कार्य पद्धति समझाई। मन कैसे अपना ही शत्रु होता है और कैसे उसे मित्र बनाया जा सकता है यह सब समझ में आ गया। क्रोध वाली मूल बात को भूल गई और अन्तर्जगत की इन गलियों में विचरण करती हुई अपने को बड़ा ज्ञानी समझ बैठी।

एक दिन मां गा रही थी–

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।

संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोभिजायते।।

मैं दनदनाती हुई पहुंची। रुको मां रुको। तुम क्या गा रही हो? जरा ठीक से बताओ न मुझे।

मां ने कहना आरम्भ किया– 'विषयों के ध्यान से संग यानि आसक्ति का निर्माण होता है.....

अधीर हो कर मैं चिल्लाई– 'वह सब छोड़ो मां। क्रोध वाली बात बताओ, क्रोध वाली।'

मां ने हंसते हुए कहा– 'तुम अपने को इतना पंडित समझती हो तो क्रोध वाली बात क्या मुश्किल है? कामना से क्रोध होता है।'

मैं- 'वाह मम्मी! अभी तक तो मुझे सिखा रही थी कि अव्यक्त संस्कार बुद्धि में विचार के रूप में व्यक्त होते हैं। विचार मन तक पहुंचते पहुंचते कामना का रूप ले कर घनीभूत होते है। फिर कर्म के रूप में इन्द्रियों के स्तर पर इसी की अभिव्यक्ति होती है। तो कामना से कर्म बना कि क्रोध?'

मां- 'यात्रा की शुरूआत तो ठीक ही की है तुमने। अब कर्म से आगे भी तो बढो।'

मैं- 'कर्म करूंगी तो फल मिलेगा।'

मां- 'जैसा चाहती हो वैसा न मिला तो?'

मैं- 'तो क्रोध आएगा..... अच्छा तो यह बात है! समझ गई, समझ गई।' अचानक कुछ कौंधा- 'लेकिन मम्मी, कामना पूरी भी तो होती है। पूरी होने पर तो क्रोध आएगा नहीं।'

मां- 'हां! इसे भी ठीक से समझ लो। एक कामना पूरी हुई तो तुम्हें खुशी होगी, अच्छा लगेगा और तुम सोचोगी कि इसी प्रकार और भी इच्छाएं पूरी हो जाएं। बताओ जरा, इसे क्या कहेंगे?'

मैं- 'मां यह तो लोभ हुआ।'

मां- 'ठीक समझा तुमने। काम का ही एक रूप है लोभ, और लोभी की इच्छाओं का अंत होता ही नहीं। अंतहीन इच्छाओं का अंत कभी संभव है क्या? बात घूम फिर कर वहीं आ जाती है। अंततः कामनाएं अपूर्ण ही रहेंगी और क्रोध आएगा ही।'

मैं- 'तो क्रोध का मूल कारण है कामना। कामना ही लोभ और क्रोध का रूप धारण करती है। मां कामना का और कोई तीसरा रूप हो तो वह भी बता दो।'

मां– 'कामना का एक और रूप है आशा। यह देखने में जितनी मासूम जान पड़ती है, है उतनी ही खतरनाक।'

मैं– 'वह कैसे?'

मां– 'देखो, यदि तुम्हारी कोई कामना पूरी नहीं हुई और क्रोध आ गया या पूरी हो गई और लोभ आ गया तो कभी न कभी तो मन में ग्लानि का निर्माण होगा। अपनी कामना तुम्हें अनुचित लगेगी और तुम छुटकारा पाने की बात सोचोगी। लेकिन यदि तुमने कोई कर्म किया तो उसके फल की आशा तुम्हें कदापि अनुचित नहीं लगेगी।'

मैं– 'नहीं मां। तुम अपनी बेटी को समझती क्या हो? अब तो मैं बड़ी सयानी हो गई हूं। मुझे पता है कि फल केवल मेरे द्वारा किए गए कर्म पर ही निर्भर नहीं करता। दूसरों के कर्म तथा और भी बहुत सी बातें है जो फल के स्वरूप और समय का निर्धारण करते हैं। यानि फल कैसा मिलेगा और कब मिलेगा इसका आग्रह अपने कर्म के आधार पर पाल लेना अनुचित है। कर्म की गति तो भगवान ही समझ सकते हैं इसलिए फल का निर्धारण भी वे ही कर सकते हैं।'

मां– 'बहुत अच्छे! तब तुमने यह भी देखा होगा कि जबसे तुम्हारा यह विश्वास दृढ हुआ है तब से फल की इच्छा पूरी होने पर तुम्हें वैसा क्रोध नहीं आता जैसा पहले आता था।'

मैं– 'हां मां! यह बात तो है। पहले क्रोध अधिक आता था क्योंकि जिस फल की आशा से काम करती थी उस फल को पाना अपना अधिकार समझती थी। फल की आशा मुझे उचित लगती थी।'

मां– 'इसी प्रकार जब तुम किसी व्यक्ति से किसी विशेष व्यवहार की आशा करती हो तो वह भी तुम्हें उचित ही लगती है।'

मैं- 'कहना क्या चाहती है मम्मी आप? मैं यदि यह आशा करूं कि बड़े मुझे प्यार दें और मेरी समस्याओं को समझने का प्रयत्न करें। छोटे मुझे सम्मान दें, तो क्या यह अनुचित है? गलत है?'

मां- 'मान लिया कि तुम सही हो और दूसरे गलत। तो भी क्रोध से नुकसान किसका होगा? क्रोध समाधान नहीं लाता सर्वनाश लाता है। इसलिए प्रश्न उचित-अनुचित या सही-गलत का नहीं। प्रश्न तो यह है कि तुम क्रोध से छुटकारा चाहती हो या नहीं? यदि चाहती हो तो ऐसी आशाएं भी तुम्हें छोड़नी होगी।'

मैं- 'मां बात तुम्हारी है तो तर्कपूर्ण। लेकिन सर के ऊपर से गुजर जा रही हैं। कुछ टिप्स बताओ न। कैसे यह आशा छोड़ी जाए?'

मां- 'देखो, तुम्हें अपने मन की सब बात माननी पड़ती है न? उस पर तुम्हारा वश चलता है क्या? तो जिस प्रकार तुम अपने मन की गुलाम हो उसी प्रकार दूसरा भी तो अपने मन का गुलाम है। वह अपने मन को अपने ही अनुसार नहीं चला सकता और तुम आशा करती हो कि तुम्हारे अनुसार चलाए? कोई भी व्यक्ति कदापि वैसा नहीं हो सकता जैसा तुम चाहती हो। सभी अपने कोटि कोटि योनियों के संचित संस्कारों के साथ जन्मे हैं और काफी हद तक उन्हीं के अनुसार व्यवहार करने पर विवश हैं। और एक राज की बात बता दूं, ऐसा समझने के बाद तुम्हारा व्यवहार क्रोध रहित हो जाएगा तो तुम अधिक सफलता पूर्वक दुनिया में सबके साथ निर्वाह कर पाओगी।'

मैं- 'ओह मम्मी! मुझे आप पर बहुत गुस्सा आ रहा है। आप हर बात को इतना पेचीदा बना देती हैं कि मेरे दिमाग की नस नस हिल उठती है। समस्या का सरल हल तो मिलता नहीं।'

मां– 'भई! इतनी विकट समस्या का स्थायी हल ढूंढने चली हो और चाहती हो कि वह बंगाली रसगुल्ले की तरह मुंह में टपक पड़े! ऐसी आशा रखोगी तो.....

मैंने हंसते हुए कहा– 'तो क्रोध आएगा ही।'

*****